❑ पुष्पा बैद

कल्पसूत्र और चित्रकला

सभ्यता के विकास के बहुत पहले, जब मानव भाषा द्वारा अपने मन के उद्‌गार प्रकट करना नहीं सीख पाया था, तब वह संकेतों, रेखांकनों या चित्रों द्वारा अपने मनोन्मेषों को अभिव्यक्त करने लगा था। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ इसका रूप विविध सरणियों से गुजरता हुआ अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनता चला गया। चित्रसूत्र में इसे "कलानां प्रवरं चित्रम्" कहकर कलाओं का सम्राट घोषित किया है।

कालान्तर में मानव के समक्ष अपने आप को अतिशय भोगों से मुक्त करने की व्यग्रता व्याप्त हो गई। मुक्ति की यही कामना जैन चित्रकला का आधार बनी। लोगों के मन को अहिंसा-करुणा, शान्ति की ओर उन्मुख कर उनमें वैराग्य भाव जागृत करने का जैन मुनियों ने बीड़ा उठाया। जैन तीर्थंकरों ने अपने आप को साधना और तपश्चर्या की आग में तपाया और प्रत्येक आत्मा के उन्नयन के लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। जैन-ग्रन्थों में मुनियों ने इसी आध्यात्मिक भाव-सम्पदा को जो आचार्य भद्रबाहु के समय से मौखिक रूप में चली आ रही थी, लिपिबद्ध किया। जीवन के आध्यात्मिक पहलुओं को जन-जन के हृदय में अंकुरित करने के लिए उन्होंने चित्रों का सहयोग लिया। ये चित्र उनकी उद्देश्य पूर्ति में भाषा से अधिक सशक्त सिद्ध हुए। बाद में इन्हीं चित्रों की शैली "जैन-चित्र-शैली" के नाम से प्रसिद्ध हुई।

ईसा की पांचवी शताब्दी में श्वेताम्बर जैन परम्परा के अनुसार गुजरात के वल्लभि के जैन साधुओं की एक संगीति हुई, जिसमें यह निर्णय किया गया कि समस्त धार्मिक मूलपाठों को लिपिबद्ध किया जाए।[1] दसवीं शताब्दी के पूर्व के प्रारंभिक ग्रन्थ प्राप्त नहीं हैं। इसका कारण सम्भवत: उस समय ऐसे ग्रन्थ भण्डारों का अभाव रहा होगा, जहां उन्हें सुरक्षित रखा जा सकता।

मुनि श्री कान्ति सागर का विशाल भारत पत्रिका (1947 भाग 40 अंक 6 पृ0 341-348) में, "जैन द्वारा पल्लवित चित्रकला" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था। उन्होंने इन जैन चित्रों को ताड़पत्र, कागज तथा वस्त्रों पर निर्मित माना है।

जैन मुनियों ने स्वतन्त्र रूप से समय-समय पर हजारों "कल्पसूत्रों" की रचना की। जिनमें ऋषभदेव, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवम् महावीर का जीवन चरित्र चित्रों के साथ लिपिबद्ध किया गया है। कुछ विशिष्ट प्रतिलिपियों का विवरण यहां प्रस्तुत है।

सन् 1216 ई0 का "कल्पसूत्र" जैसलमेर के भण्डार में सुरक्षित है। "कल्पसूत्र" व कालकाचार्य कथा "जिसका रचना काल 1370 ई0 माना गया है, मुनि पुण्य विजय जी के संग्रह में है।" कालकाचार्य कथा में 6 चित्र हैं। ये चित्र सुदक्ष कलाकौशल के उदाहरण हैं। चौदहवीं शताब्दी का "कल्पसूत्र" अहमदाबाद के साराभाई नवाब के संग्रह में सुरक्षित हैं। भारतीय नाट्य, संगीत और चित्रकला तीनों ही दृष्टियों में उसका महत्व अपूर्व है। इन चित्रों में राग, रागिनी, मूर्छना, तान की योजना संगीत शास्त्र के अनुसार है। 1427 ई0 का "कल्पसूत्र" इण्डिया आफिस लंदन में संग्रहीत है, इसमें 46 चित्र हैं।

कागज पर प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में सर्वोत्तम और प्रथम "कल्पसूत्र कलाकाचार्य" कथा अंकित है, जो प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम में सुरक्षित है। सन् 1415 की रचना "कल्पसूत्र कालकाचार्य" कथा भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका कल्पसूत्र भाग कलकत्ता की बिड़ला एकेडमी के संग्रह में है और कालक-भाग बम्बई के श्री प्रेमचन्द जैन के निजी संकलन में सुरक्षित है। सन् 1465 ई0 में चित्रित "कल्पसूत्र" के चित्र हुसैन शाह शर्की[2] के शासन काल में जौनपुर में चित्रित हुए। इसमें नारी आकृतियों को समकालीन वेश-भूषा में दर्शाया गया है। इस तरह "जैन चित्रकला" गुजरात की श्वेताम्बर कलम से आरम्भ होकर राजपूताना में वर्षों तक अपना विकास करती रही और बाद में इरानी प्रभावों से मुक्त होकर "राजपूत कलम" में ही विलयित हो गई।[3]

छपाई के आविष्कार के साथ आज भी इनकी प्रतिलिपियां विभिन्न सम्पादकों द्वारा समय-समय पर मुद्रित की जा रही हैं।

कल्पसूत्र के चित्रकार प्राय: मुनि ही हुआ करते थे, वे आत्म सिद्धि के लिए साधना और तपश्चर्या में निरत रहते थे। इस अवस्था में उन्होंने जो कुछ भी अंकित किया तीर्थंकर-मय होकर किया। वे धार्मिक और आध्यात्मिक अन्तर्भावनाओं से ओत-प्रोत थे। उनका उद्देश्य था तीर्थंकर-वाणी को जन-जन में पहुंचाना। उन्होंने "जिन-चरित्रों" को अपनी लेखनी और तूलिका का विषय बनाया। विभिन्न रंगों की तड़क-भड़क में न पड़कर उन्होंने मूल रंगों का ही प्रयोग किया। लाल,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीले, हरे, काले एवम् सफेद रंगों के साथ मुगल शासन काल में नीले, सुनहरी व रूपहरी रंगों का प्रयोग भी जुड़ गया। ताड़पत्रीय चित्रों में जैन कलाकारों की रेखाएं सूक्ष्म और सशक्त हैं। इनका मूल उद्देश्य भावों को अभिव्यक्त करना था, जिसमें वे सफल हुए।

कल्पसूत्र का आयाम प्राय: 5 से 6 इंच चौड़ा एवम् 10 से 12 इंच लम्बा रहा करता है। उसी में एक ओर तो प्रसंग का विवरण और दूसरी ओर उस विषय पर आधारित चित्र अंकित किए जाते हैं। फलत: इसका वर्ग क्षेत्र 9 से 12 वर्ग इंच तक ही सीमित रहता है। इतने लघु दायरे में अपनी बात कह देने में ये कलाकृतियां अद्वितीय हैं। बाद में इनमें इरानी प्रभाव के कारण बेल-बूटों की पच्चीकारी का प्रचलन भी चल पड़ा।

इन चित्रों के अध्ययन से स्पष्ट है कि जैन देवी-देवताओं के परम्परागत अंकन होते हुए भी ये कलात्मक हैं। पृष्ठभूमि सादी, आकृतियां नुकीली एवम् परली आंख युक्त हैं। पात्र के अनुरूप ही उनकी साज-सज्जा, आकार-प्रकार और अलंकरण हैं। एक ओर देवतागण अथवा राजा आभूषणों से सुसज्जित हैं तो दूसरी ओर श्रमण श्वेत अथवा स्वर्णिम वस्त्र धारण किए हुए हैं। कल्पसूत्र की चित्रकला का विषय पुरुष प्रधान हैं। पुरुष दुपट्टा और धोती धारण किए हुए हैं। स्त्रियां कसी हुई अंगिया तथा धोती पहने नजर आती हैं। वस्त्र बेल-बूटों से आच्छादित हैं। पेड़, पौधे स्थान के अनुसार चित्र की आलंकारिकता को बढ़ाते हैं। यही नहीं इन चित्रों में शैली का विकास भी दिखाई देता है। उदाहरणार्थ उझमफोई- संग्रह - कल्पसूत्र के महावीर-जन्म वाले दृश्य में परदे का थोड़ा सा अंश दिखाई देता है किन्तु इडर वाले चित्रों में इसी का विस्तृत अंकन हुआ है।

संभवत: सर्वाधिक सुन्दर एवं विपुल चित्रित कल्पसूत्र की प्रति देवशा नो पाड़ो भण्डार, अहमदाबाद की प्रति है। घने वृक्षादि तथा फूलों वाले पौधे, रंगीन चिड़ियां, जीवन्त पशु, विविध रंगों के वस्त्र पहने विभिन्न मुद्राओं में अंकित कन्याएं इस चित्रावली की विशेषताएं हैं। इसमें भरत के नाट्य शास्त्र पर आधारित विभिन्न नृत्य एवं संगीत की मुद्राएं हैं।

इन चित्रों के कुछ विशेष प्रसंग उल्लेखनीय हैं– महावीर स्वामी की दूसरी माता त्रिशला के चौदह महास्वप्न एवम् गर्भापहरण, महावीर का जन्माभिषेक, वर्षीदान, दीक्षा ग्रहण के समय पंचमुष्टि लोच करते हुए महावीर तथा महावीर का समवसरण।

भगवान नेमिनाथ की बारात का दृश्य, ऋषभदेव का राज्याभिषेक तथा पार्श्व तपस्या का चित्रण भी सराहनीय है। इन चित्रों में वृषभ, सिंह, हाथी, सर्प आदि पशुओं का रेखांकन कलाकार के कौशल का प्रशस्त नमूना है। कलश, छत्र, अग्नि, ध्वज आदि का अंकन प्रतीकात्मक है।

जैन ग्रन्थों पर लकड़ी की दफ्तियां सुरक्षार्थ बांधी जाती थीं। इन दफ्तियों पर सूक्ष्म बेल-बूटों की चित्रकारी कलाकार के धैर्य और साधना का अद्वितीय उदाहरण है।

साधना के रास्ते पर बढ़ते हुए एवम् तीर्थंकर की वाणी का स्मरण करते हुए मुनियों एवम् जैन कलाकारों ने जो अनुभूति की वह उनकी कलाकृति की आधार-शिला बनी, जिसने जन साधारण के आध्यात्मिक पक्ष को अत्यन्त प्रभावित किया, साथ ही साथ राजस्थानी और मुगल शैली के निर्माण में भी महत्वपूर्ण योग दिया।

इस तरह 'कल्पसूत्र' ने भारतीय ज्ञान भण्डार को समृद्ध किया। मुगल सल्तनत के संकटकालीन समय में भारतीय सभ्यता एवम् संस्कृति को बचाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वर्णमय और रजतमय होने के कारण ये पोथियां अत्यन्त मूल्यवान हैं। इनका योगदान साहित्यिक, ऐतिहासिक, कलात्मक एवम् आध्यात्मिक सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। आज धर्म-सूत्रों के साथ ये चित्र भी हमारी आध्यात्मिक परम्परा की अभिन्न धरोहर बन गई हैं।

संदर्भ

1. के. कासलीवाल, जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान, 1964 जयपुर - पृ0 2
2. खण्डालावाला (कार्ल) एवं मोतिचन्द्र इन इलस्ट्रेटेड कल्पसूत्र पेण्टेड पट - 17-14 जौनपुर इन ए0 डी0 1465 ललितकला-12 पृ0 9-15
3. वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला, पृ0 138

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org